धार्मिक रहस्यवाद में दिक्-काल-बोध

☐ डॉ० वीरेन्द्रसिंह

धर्म, मानव संस्कृति का वह आदितम रूप है जब आदिमानव ने प्रकृति-शक्तियों (जल, आकाश, वायु, सूर्य आदि) के प्रति भय तथा जिज्ञासा से प्रेरित होकर, उनका प्रतीकात्मक साक्षात्कार किया, फलस्वरूप जागतिक दिक्काल के स्तर से वह क्रमशः ब्रह्माण्डीय या पराजागतिक स्तर की 'विराटता' की ओर अग्रसर हुआ। यह जागतिक दिक्काल से पराजागतिक दिक्काल तक की यात्रा का अन्योन्य सम्बन्ध है और विभिन्न ज्ञानानुसार (धर्म, दर्शन, विज्ञान, समाजशास्त्र, इतिहास आदि) किसी न किसी रूप में इस जगत् और ब्रह्मांड के सम्बन्धों को समझने के माध्यम हैं। इस दृष्टि से धर्म, जागतिक दिक्काल से विराट या पराजागतिक दिक्-काल का अनुभव कराता है जो व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों स्तरों पर घटित होता है। धर्म, चाहे ईश्वरवादी हो या निरीश्वरवादी—दोनों अपने-अपने तरीके से "विराट" या सत्य तक पहुँचना चाहते हैं। अतः जहाँ तक धार्मिक अनुभव अथवा रहस्यवाद का प्रश्न है, उसका आरंभ जागतिक दिक्काल के चतुर्वर्गीय स्तर से होता है जो क्रमशः ब्रह्मांड की विराटता को समेटता हुआ, परमशक्ति या परमतत्त्व तक पहुँचता है। यहाँ पर एक तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है कि जब व्यक्ति या समूह जागतिक से पराजागतिक स्तर की ओर बढ़ता है, तो वह दो प्रकार की व्यवस्थाओं के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध से गुजरता है। एक है जागतिक दिक्-काल की व्यवस्था और दूसरी है "अनन्त" की व्यवस्था। इस द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध से गुजरने की प्रक्रिया में वह उपासना, साधना और भक्ति के विविध रूपों को स्वीकारता है। उपासना और साधना वे माध्यम हैं जिनके द्वारा साधक अपने "स्व" को दिक् और काल की सापेक्षता में अतिक्रमित करता है। यह अतिक्रमण यह स्पष्ट करता है कि दिक्काल की दो व्यवस्थाएँ एक साथ प्राप्त होती हैं अर्थात् जागतिक दिक्काल की व्यवस्था और पराजागतिक दिक्काल की व्यवस्था। यह "अनन्त" की व्यवस्था प्रत्येक धर्म में किसी न किसी रूप में प्राप्त होती है। यदि गहराई से देखा जाए तो प्रत्येक ज्ञानानुशासन न्यूनाधिक रूप से "महाकाल" के इस अनन्त-बोध से टकराते हैं। यहाँ पर, मेरे विचार से जागतिक स्तर को नकारा नहीं जा सकता है क्योंकि "अनन्त व्यवस्था" की सापेक्षता में इसका एक सार्थक निर्धारण आवश्यक है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि दिक्काल की दोनों व्यवस्थाएँ एक दूसरे की पूरक हैं अथवा उनमें कार्य-कारण सम्बन्ध है। यहाँ पर डब्लू. टी. स्टेस का मत है कि ईश्वर या ब्रह्म दिक्काल से निरपेक्ष है।[1] जो मेरे विचार से पूर्णतया ठीक नहीं है। इसका कारण यह है दिक्काल की दृष्टि जागतिक और अनन्त का सापेक्ष सम्बन्ध है क्योंकि चाहे हम जागतिक दिक्काल से "अनन्तता" की ओर जाएँ या 'अनन्तता' से दिक्काल की ओर आएँ—दोनों स्थि-

१. टाइम एण्ड इटर्निटो, डब्लू. टी स्टेस, पृ. ७२

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तियों में प्रदत्त दिक्काल एक ऐसा सत्य है जिसके बगैर हम दिक्काल की विराटता या अनन्त सत्य का बोध नहीं कर सकते हैं। इस व्यवस्था को हम 'दिव्य' व्यवस्था भी कह सकते हैं जिसकी अभिव्यक्ति संतों तथा भक्तों ने विविध रूपाकारों के द्वारा की है। इसे मैं और अधिक स्पष्ट शब्दों में कहूँ तो काल का वह 'बिंदु' जहाँ पर ये दोनों व्यवस्थाएँ एक-दूसरे को काटती हैं। यह 'बिंदु' साधक या रहस्यवादी का वह अनुभव या "प्रतीति-बिंदु" है जहाँ से वह जागतिक और तात्त्विक व्यवस्थाओं को सम्बन्धित करता है। अतः रहस्यवादी अनुभव के लिए यह "प्रतीतिबिंदु" जिसे हम काल का वर्तमान प्रखंड भी कह सकते हैं, इसके बगैर अनन्त या तात्त्विक का बोध संभव ही नहीं है। अनन्त या शाश्वत में काल और दिक् का सूक्ष्म रूपान्तरण होता है न कि उनका नकार। काल का यह वर्त्तमान प्रतीति-बिंदु या क्षण जहाँ से व्यक्ति 'अनन्तता' का बोध करता है, वह मात्र संतों और रहस्यवादियों तक सीमित न होकर वैज्ञानिकों, दार्शनिकों तथा कलाकारों के दिक्काल बोध में एक प्रेरक तत्त्व है। कहने का तात्पर्य यह है कि धार्मिक, रहस्यवादी, दार्शनिक, रचनाकार आदि सभी भिन्न-भिन्न स्तरों पर "अनन्त-बोध' से टकराते हैं, अंतर पद्धति और अनुभव के आवेग का है। अतः टी. एस. इलियट का यह मत है कि काल और कालहीनता के अंतरच्छेदन के बिंदु का अनुभव संतों का विषय है।[1] यह उपर्युक्त कारणों से पूर्णरूप से सत्य नहीं है।

इस दृष्टि से ज्ञानमीमांसा के क्षेत्र में 'रहस्यवाद' का अपना स्थान है जो जागतिक दिक्काल और व्यापक अर्थगर्भित ब्रह्मांडीय अथवा अनंतबोध को एक सूत्र में पिरोता है। रहस्यवादी का अनन्त बोध प्रातिभज्ञान या अनुभूति का विषय है जो एक जैविक मानसिक क्रिया है जिसे आधुनिक परामनोविज्ञान अतींद्रिय प्रत्यक्षीकरण (एक्स्ट्रा सेन्सरी परसेप्शन) की संज्ञा देता है।

इसी संदर्भ में यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि अनन्त का यह बोध एक 'रूपक' है क्योंकि रहस्यवादी रूपक के द्वारा इस संबंध को संकेतित करता है। दिक् और काल का यह संकेतन भाषा के प्रतीकों और रूपाकारों के द्वारा ही व्यक्त होता है। जागतिक से पराजागतिक तक की यात्रा को कवि या रहस्यवादी भाषिक रूपाकारों से ही संवेदित करते हैं। यहाँ पर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ये रूपाकार (प्रतीक: बिम्ब, मैं, तुम आदि) जागतिक दिक् और काल से ही ग्रहण किए जाते हैं जिन्हें क्रमशः तात्त्विक अर्थ संदर्भों का वाहक बनाया जाता है। ये भाषिक रूपाकार सत्य या अनन्त सम्बंध के माध्यम हैं, पर इनका आधार यह प्रदत्त दिक् और काल का जागतिक स्तर है। ये रूपाकार उपर्युक्त दो व्यवस्थाओं के अनुसार दो प्रकार के होते है—एक पिंडीय (माइक्रो) और दूसरे ब्रह्मांडीय या अनन्त (मैक्रो) स्तर को संकेतित करने वाले। ये सभी 'रूपाकार' यथार्थ और सत्य के भिन्न रूपों का प्रतीकात्मक निर्देशन करते हैं। नदी, चकोर, पिंड, चातक, मैं, गोपी, पतंग, प्रेमिका आदि माइक्रो या पिंडीय स्तर के रूपाकार हैं तथा दूसरी ओर क्रमशः समुद्र, चाँद, ब्रह्मांड, मेघ, तुम, कृष्ण, दीपक, प्रेमी (पति) आदि "मेक्रो" स्तर के प्रतीक हैं। माइक्रो स्तर के रूपाकार जागतिक स्तर से सम्बन्धित हैं और मैक्रो स्तर के रूपाकार (जो जगत के हैं) पराजागतिक स्तर से। रहस्यवादी इन जाग-

1. To apprehend.
The point of intersection.
Of the Timeless with Time is an occupation for the Saint. —T. S. Eliot

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिक रूपाकारों को रूपक और व्यंजना की शक्ति के द्वारा तात्त्विक अर्थ-संदर्भों तक ले जाता है। इस प्रकार वह काल के वर्तमान बिंदु से तथा दिक् की वस्तुओं—पदार्थों से पराजागतिक अर्थ-संदर्भों को व्यक्त करता है। इस दृष्टि से इन रूपाकारों का महत्त्व धार्मिक रहस्यभावना से जितना है उतना सृजनात्मकता से, क्योंकि रचनाकार भी इन्हीं रूपाकारों के द्वारा बृहत्तर अर्थ संदर्भों को उजागर करता है। भारतीय संतों, सूफियों तथा ईसाईयों में यह रहस्यवादी प्रवृत्ति सामान्य है जो अपने-अपने तरीके से सीमा और असीम के द्वन्द्व को रेखांकित करते हुए क्रमशः इस सम्बन्ध को निर्द्वन्द्व स्थिति तक ले जाते हैं। कबीर ने पति-पत्नी के युग्म द्वारा इन दो स्तरों के द्वन्द्व तथा संगति को इस प्रकार व्यक्त किया है—

हरि मोर पीव मैं राम की बहुरिया
राम बड़ो मैं उसकी लहुरिया।

दूसरी ओर इस्लामी सूफी कवि रूमी ने इसी सम्बन्ध को मैं और तुम के द्वारा व्यक्त किया है और वह भी "क्षण" के द्वारा—

"वह क्षण कितना आनंदप्रद होगा,
जब 'मैं' और 'तुम' भवन में बैठे होंगे,
हमारे दो 'आकार' और 'रूप' हैं
पर आत्मा एक है—हमारी और तुम्हारी।"
(मिस्टिक्स ऑफ इस्लाम में उद्धृत)

उपर्युक्त उदाहरण यह स्पष्ट करते हैं कि रहस्यवादी अनुभव में 'रूपाकार' का महत्त्व उपर्युक्त दो व्यवस्थाओं के अन्तर्छेदन को प्रस्तुत करता है। बर्ट्रेन्डरसेल ने इस रहस्यवादी प्रक्रिया को निरपेक्ष न मानते हुए सापेक्ष माना है और उसे एक तार्किक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है। यह मानसिक और आध्यात्मिक यात्रा एक आरोहण है जिसकी चार अवस्थाएँ रसेल ने मानी हैं। प्रथम विश्वास की अवस्था है जो क्रमशः दूसरी अवस्था "अन्तर्दृष्टि" को जन्म देती है। दूसरी अवस्था में साधक या व्यक्ति वस्तुओं और घटनाओं की प्रकृति और उनके सम्बन्ध के प्रति सचेत होता है। तीसरी अवस्था "एकात्म भाव" की अवस्था है जहाँ मन और पदार्थ का अभेद स्थापित होता है। यह एकत्व का अनुभव चौथी अवस्था की ओर साधक को ले जाता है जहाँ वह दिक् और काल के जागतिक स्तर का सूक्ष्म एवं व्यापक रूपांतरण करता है।[1] यदि गहराई से देखा जाए तो रहस्यवादी अनुभव और वैज्ञानिक दार्शनिक अन्वेषण या प्रत्ययन में ये अवस्थाएँ किसी न किसी रूप में प्राप्त होती हैं जो अन्वेषक को 'सत्य' के परिशुद्ध रूप तक ले जाती है, पर उसके अन्तिम रूप तक नहीं। परिशुद्ध सत्य के निकट रहस्यवादी और अन्वेषक दोनों पहुँचते हैं पर शायद उसके सम्पूर्ण और अन्तिम रूप तक नहीं। यही ज्ञान का गत्यात्मक रूप है।

अन्त में, मै यह बात जोर देकर कहना चाहूँगा कि अनन्त या दिव्य की व्यवस्था के मानने का यह अर्थ नहीं है कि जागतिक दिक्काल की व्यवस्था को असत्य, भ्रम या अर्धसत्य माना जाए; दूसरी ओर जागतिक दिक्काल की व्यवस्था को मानने का यह अर्थ नहीं है कि अनन्त या दिव्य को वायवी कहकर नकारा जाए। दोनों की 'अति' हमें 'सत्य' से दूर ले जाती है। आवश्यकता है उनमें एक संतुलन की, दोनों व्यवस्थाओं के सार्थक निर्धारण की। यह निबन्ध इसी की प्रस्तावना मात्र है।

—५ज्ञ १५, जवाहर नगर, जयपुर-३०२००४

१. मिस्टिसिज्म एण्ड लॉजिक, बर्ट्रेंड रसेल, पृ० २१ □□

धम्मो दीवो
संसार समुद्र में
धर्म ही दीप है
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org